Impact Factor : 1.883 Peer-Reviewed Journal ISSN : 2278 – 5639
Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ)
{Bi-Monthly} Volume – V, Issue – I June 2016

# हिन्दी में दलित साहित्य: लेखन एवं शोध की नई दिशायें

**डॉ.भंडारे उद्धव तुकाराम**
**अध्यक्ष, हिंदी विभाग**
**चांगू काना ठाकूर कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय, नवीन पनवेल**

वर्तमान में जो साहित्य हिन्दी में हैं, दलित साहित्य उससे भिन्न है. चूंकि यह दलित साहित्य मजलूमों तथा समस्त सर्वहारा वर्ग का जनवादी साहित्य है. इसलिए उसमें दूसरे साहित्य से अंतर होना स्वाभाविक है. क्योंकि हिन्दी के साहित्यकार मानते हैं कि ''साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है.'' जब कि दलित साहित्यकार, साहित्य को मात्र दर्पण ही नहीं मानता वरन् जनसमस्याओं के निराकरण का साधन मानता है. खासकर दलित साहित्य दलित, शोषित और सर्वहारा वर्ग के हितों की जबर्दस्त वकालत भी करता है. आमतौर पर सामाजिक और आर्थिक बदलाव में दलित साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है. क्योंकि दलित वर्ग समाज से अलग थलग कटा, उपेक्षित नारकीय जीवन जीने हेतु मजबूर किया जाता रहा है. दलित वर्ग दोहरी मार से पीड़ित रहा है, प्रथम सामाजिक शोषण जिसमें चातुर्वर्णिय व्यवस्था के आधार पर अस्पृश्यता विकास में अवरोधक रही है. दूसरा आर्थिक शोषण जब सामाजिक दृष्टि से हेय माना जाता था ऐसी स्थिति में गांव के बाहर मरे हुये जानवरों का मांस खाकर रहना पड़ता था. अछूतों की परछाई पड़ने से सवर्णों को परहेज होता था. मनुस्मृति में लिखा है कि, यदि 'शूद्रों ने वेद मंत्रों का उच्चारण कर लिया तो उसकी जबान काटने का प्रावधान है. सुनने पर कानों में गरम शीशा पिघलाकर डालने और देखने पर आंखें फोड़ने का प्रावधान है. दलित साहित्य जो हिन्दी में लिखा जा रहा है. उसकी भाषा में सरलता, सुबाच्यता तथा बनावटीपन भाषा को अस्वीकार कर जनसाधारण वर्ग की भाषा में सामाजिक कुरितीयों की परतों को खोलता है. ताकि साहित्य के द्वारा सामाजिक प्रगति के मार्ग प्रशस्त किये जा सकते है.

साहित्य के संबंध में कहावत है कि ''न तोप निकालों और न तलवार निकालो, निकालना ही है, तो अखबार निकालो.'' आज हम जिस मुकाम पर है, वह पूर्व में ऐसा नहीं था. लम्बे संघर्षो के परिणामस्वरूप कठिनाईयों को चीरकर इस स्थिति में आये हैं. इसके अनेकों ऐतिहासिक सांस्कृतिक और आर्थिक कारण रहे हैं. अब हम २१ वही शदी में जाने हेतू उत्कंठित है. हिन्दी के दलित साहित्य में यह बात स्पष्ट होती है कि ''वह सदियों से उपेक्षित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव हेतु एक नई रोशनी प्रदान करता है. जैसा कि दलित वर्ग आर्थिक और सामाजिक रूप से बेबस, लाचार और गुलाम रहा है. वर्णव्यवस्था से उत्पत्र गुलामी की जंजिरों में फसकर समाज से एकदम कटकर रहने के लिए मजबूर किया जाता रहा है.

गैरदलित वर्ग इस बात की अनुभूति नहीं करता है अर्थात ''जाके पाव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई'' के आधार पर वह साहित्य लिखता है. जिसमें कल्पना और ऊंची उड़ानों की बातें रहती हैं, जब कि दलित साहित्य में भोगी हुई बातों का यथार्थ चित्रण होता है. इसका प्रारम्भ १९ वी शताब्दी के पूर्वार्ध्द में महात्मा ज्योतिबा फूले द्वारा लिखित पुस्तक 'गुलामगिरी' से प्रारंभ होता है. सामाजिक क्रांति की मूलप्रेरणा उन्होंने पूना से प्रारंभ की थी. पहिले महिलाओं को पढ़ने का अधिकार नहीं था. मनुस्मृति में इसका विधान है. स्त्री का जब जन्म होता है तो सर्वप्रथम अपने पिता के अधिनस्थ होती है. युवा होने पर अपने पति के अधिनस्थ तथा बूढ़ी होने पर अपने संतान के अधिनस्थ होती है. उसे कभी भी स्वतंत्र रहने की अनूमति नहीं थी. ज्योतिबा फूले की पत्नि सावित्री बाई फूले ने अपने पति के सहयोग से स्त्री शिक्षा का प्रारंभ किया. पूना में मराठा व सवर्ण लोगों ने इसका विरोध किया और गोबर व गंदी चीजें फेंककर उसकी उपेक्षा किया करते थे. अंत में स्त्री शिक्षा के द्वार खुल गये. डॉ. अम्बेडकर जो भारतीय संविधान के शिल्पकार है उन्होंने सर्वप्रथम 'जनता', 'प्रबुध्द—भारत' और 'मूकनायक' अखबार निकालकर दलित साहित्य का सूत्रपात किया. जिसके कारण एक नये इतिहास का सृजन हुआ रविंद्रनाथ टैगोर भी अपनी कविताओं में कहते हैं कि, ''कवि को स्वयं दलित साहित्यकार होना जरूरी है.''

हम निश्चित तौर पर यह कह सकते हैं कि, दलित साहित्य वह है जिसमें बौध्द संस्कृति, मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिध्दात एवं डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर पर लिखा साहित्य है.'' जो मराठी से महाराष्ट्र के अधिकांश दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा गया है. जिसका आम तौर पर मराठी से हिंदी में अनुवाद होकर आ रहा है. हिन्दी में दलित साहित्य उभरकर शोध कार्य के द्वारा सामने आ रहा है. डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखा गया दलित साहित्य 'शूद्र कौन और कैस', भगवान 'बुध्द व उनका धम्म', दया पवार की 'अछूत', शरण कुमार लिम्बाले की 'अक्करमासी', भगवानदास की 'मैं भंगी हूं' तथा डॉ. भदन्त आनंद कौसल्यायन द्वारा लिखित 'वर्णव्यवस्था अर्थात मरण व्यवस्था' जैसी क्रांतिकारी व बौध्दिक अनेकों रचनायें दलित साहित्य के रूप में सामने आ रही है.

वैसे तो हर लेखक किसी न किसी रूप में किसी खेमे में रहकर साहित्य का सृजन करता है. दलित लेखक का केन्द्रबिंदू बौध्द साहित्य व डॉ. अम्बेडकर एवं मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिध्दान्त है. आज समस्त उत्तरी भारत में दलित साहित्य हिन्दी के माध्यम से फैल रहा है. जिसका उद्देश्य यह होना चाहिये कि हमें अपनी ईमानदारी, मेहनत और नियमित लेखन के द्वारा हर समस्याओं का निदान दलित साहित्य के माध्यम से करना चाहिये. दलित साहित्य आलोचना के दायरों में कैद नहीं होना चाहिये. वरन् धैर्य, विवके एवं बुध्दिमत्ता से भारतीय साहित्य के माध्यम से जनमानस में अपनी अलग पहचान बनानी होगी. वैसे भी दलित साहित्य राष्ट्रीय और कौमी

एकता का पक्षधर है. दलित साहित्य आक्रोश या विभत्स साहित्य नहीं है बल्कि वेदकाल से सनातनी पंडितों ने जो साहित्य लिखा है वही विभत्स साहित्य है. उन्होंने मनुस्मृति आदि ग्रंथ लिखकर स्त्री व शुद्रों को गुलाम, लाचार, बेबस बनाने का षडयंत्र रचा है. भगवतगीता में भी यही बात कहीं गई है. ''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टा गुण कर्म विभागश:''जो आज के समय में अनर्गल और बेबुनियाद है.

आज तक जो दलित वीरों, क्रांतिकारियों के गौरव गाथाओं की उपेक्षा की गई है. जिसमें विरसा मुंडा, झलकारी बाई, डॉ. अम्बेडकर, ज्योतिबा फूले जैसे लोग उपेक्षा के शिकार है. दलित समाज पर हुये अन्याय, अत्याचार शोषण आदि की जानकारी देना दलित वीरों वीरांगनाओं का प्रचार–प्रसार करना दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य है. महामानव गौतम ने कहा है कि, ''कुछ लोगों का हृदय पत्थर जैसा कठोर होता है. इसलिए वे पत्थरों की मूर्तियों की पूजा करते है. यदि वे ऐसा न करते तो जीवित इंसानों की अवश्य कद्र करते.'' राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' भी यही बात कहते हैं ''कैलाश भ्रमण करने फिर जाना, पहिले निज घर में रह लो, फिर हर–हर करते रहना, पहिले नर–नर कह लो.'' इसलिए आज आवश्यकता है कि जीवित इंसानों, मजलूमों, उपेक्षित वर्गो को दलित साहित्य के माध्यम से ऊपर उठाया जाये. हर समस्या का निदान संभव होता है. आसमान से टपककर कोई भी व्यक्ति महानता प्राप्त नहीं कर सकता और न ही समस्याओं का निदान हो सकता है. बल्कि उसे वातावरण परस्थितियों संस्कार और उतार चढ़ाव जीवन में आते हैं जैसा वह भोगता है, वैसा वह लिखता है.

दलित साहित्यकार वैसे भी स्पष्टवादी तार्किक, ठुकराया गया संघर्षशील व्यक्ति होता है. बुध्द का दर्शन ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' हेतु था. मार्क्स ने भी ईश्वर का प्रत्याख्यान किया. उसके मतानुसार धर्म भी अफीम की भांति है. जो जाग्रत मानव को मुर्च्छि कर देता है, सुला देता है और यह भी सत्य है कि धर्म ने हमेशा से ही संसार को मुर्च्छित किया है. दलित साहित्यकार दलित साहित्य के माध्यम से वास्तविकता की परतों को कुरेदता है, उसका आपरेशन करता है. उसमें नवीनता, प्रगतिशिलता, बौध्दिकता एवं प्रकाश देता है. अंधविश्वासी, सड़ी, गली रूढ़िवादी, कपोल–काल्पनिक भाग्यवादी, व भाग्यवादी मान्यताओं को दलित साहित्यकार उन्नति के मार्ग में बाधक मानता है. दलित साहित्य में ''अपने दीपक आप बनकर सत्य को उजागर कर जीने का मार्ग बतलाया है'' इसकी अपनी एक स्वयं की चिंतन प्रणाली है. ''दुनिया से भाग खड़े होने की जरूरत नहीं है, बल्कि दुनियां को पहिले से भी बेहतर बनाने की बौध्दिक व क्रांतिकारी दर्शन का दूसरा नाम दलित साहित्य है.'' निरन्तर नये–नये कार्यों का उद्घाटन अनुसंधान द्वारा मानव समाज व पशु समाज के बीच विभाजन करना और बेहतर व्यवस्था का नवनिर्माण करना ही दलित साहित्य का मकसद है.'' इसी को कहते है ''जिंदगी जिंदादिली का नाम है, मुर्दा दिल भला क्या

खाख जिया करते हैं.''

भारतीय परिवेश में आधुनिक तौर पर पत्रकारिता का प्रारंभ १७३० में हुआ. तब से लेकर आज तक पत्रकारिता ने समाज और राष्ट्र की गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. दलित साहित्य ने आगे चलकर समाज की जड़ता को तोड़ा है. मानव समाज का अस्तित्व ही कहीं समाप्त न हो जाये. इसलिए सड़ी गली मान्यताओं का अंत होना लाजिमी है. २१ जनवरी १९२० में साप्ताहिक 'मूकनायक' का प्रकाशन डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर द्वारा किया गया, उन्होंने प्रथम अंक के सम्पादकीय में लिखा उसमें दलित साहित्य का यथार्थ बोध होता है—

''आज जितने भी समाचार पत्र मौजूद हैं वे हिन्दू जाति कि ही रक्षा में लगे हैं. वे अन्य जातियों के हितों की और दृष्टिपात नहीं करते हैं. हमारा देश विषमता का मायका है. सत्ता और ज्ञान के अभाव में अब्राह्मण अर्थात पिछड़ा तथा दलित वर्ग प्रगति से वंचित है. गरीबी, अयोग्यता और अज्ञान ने विशाल दलित समाज को गहरे गर्त में डाल रखा है.''

**दलित साहित्य का सामाजिक और आर्थिक पक्ष:**

दलित साहित्य एवं पत्रकारिता का सीधा संबंध समाज से होता है और समाज की चेतना आगे चलकर राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करती है. डॉ. अम्बेडकर का दलित साहित्य एक ऐसी चेतना का प्रतीक बनी जो सदियों से उपेक्षित और असहाय थी. सवर्णों द्वारा रचे गये विधानों में निचले वर्ग का जीवन नारकीय बना दिया था. इस त्रासदी को समाप्त करना ही डॉ. अम्बेडकर का मुख्य लक्ष्य था. तुलसीदास ने भी राम चरित्र मानस में लिखा है कि, ''ढोल गवार शूद्र पशू नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'' तथा ''पूजई विप्र गुण ज्ञान हीना, शूद्र न पूजैही ज्ञान (गुण) प्रवीणा.'' इस विचारधारा को डॉ. अम्बेडकर ने पुरी तरह से नकारा. उन्होंने अपने आंदोलन को आगे बढ़ाया और उन्होंने समानता का अधिकार देने सवर्णों से अपील की— ''सवर्ण अछूतों को उनके नागरिक अधिकार दिलाने में सहायता करें, उन्हें नौकर दे, अछूत छात्रों को शिक्षा दे और मरे जानवरों को स्वयं उठाये. ३ अप्रैल १९२७ को प्रकाशित 'बहिष्कृत भारत' अखबार के माध्यम से उन्होंने दलितों से अपील की कि, वे सारे ऐसे घृणित कार्य बंद कर दे जो उनके व्यतिव के विकास में अवरोध उत्पत्र करते हैं. इस पत्र का इतना व्यापक प्रचार हुआ कि अछूतों ने मांगना छोंड़ दिया, झूठन लेना बंद कर दिया. मुर्दा जानवर उठाना छोड़ दिया. डॉ. अम्बेडकर सामाजिक व आर्थिक समानता के पक्षधर थे. वे जो सदियों से चली आ रही उस कुव्यवस्था को तोड़ना चाहते थे. वे उस सामाजिक कुरूपता के खिलाफ लड़ाई लड़ना चाहते थे. आधुनिक सुधारवादियों के मार्ग में मनुस्मृति सबसे अधिक बाधक रही है. आज भी हिन्दू समाज पर इसकी पकड़ कैंसर के रोग से किसी भी अंश में कम नहीं है. हर पतनोन्मुख समाज स्वयं अपनी कब्र खोदनेवाला वर्ग पैदा कर

देता है. हर दूषित सभ्यता स्वयं अपने विनाशकारी पुत्र पैदा करती है और यह प्रक्रिया बराबर जारी रहती है. इसी के चलते समाज निरंतर गतिशील बना रहता है अन्यथा वह सड़ जाता.

भोगवादी परम्परा के खिलाफ जबर्दस्त प्रक्रिया हुई. वैचारिक क्रांति ने तूफान का रूप ले लिया और समाज अध्यात्म की और उन्मुख हुआ. एक लम्बे अंतराल के बाद डॉ. अम्बेडकर ने इसी उद्‌बोधन को अभिनव रूप दिया कि, ''गुलाम को इस बात का अहसास करा दिया जावे कि वह गुलाम क्यों, वह बगावत कर देगा.''

जिसके ही कारण 'शिक्षित बनो' संगठित हो, संघर्ष करों के रूप में भारत की धरती पर यह बात गूंजी. डॉ. अम्बेडकर का यह सिंहनाद आज दलितों, शोषितों जिसमें नारी भी आती है, कि मुक्ति के लिए दलित साहित्य का माध्यम लेकर वरदान बन गया है, ऐसी स्थिति में हिन्दी के माध्यम से दलित साहित्य लेखन की प्रक्रिया प्रासंगिक हो गई है. वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र तेजी से तब्दील होता जा रहा है. शिक्षा के कारण काफी हद तक धीमी गति से ही सही सुधार आया हैं. अपितु दलितों, शोषितों, के सामाजिक रहन सहन आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में सुधार आया है. संविधान सभा में १० सितम्बर १९४९ को नई दिल्ली में डॉ. अम्बेडकर ने किसानों, मजदूरों के प्रति ये शब्द कहें हैं कि, ''आप स्वामियों के लिए हल चलाते हो, वे आपको नीचा दिखाते हैं आप मेहनत और ध्यान से जो सुंदर वस्त्र बुनते हो वे आपके दुश्मन पहिनते हैं बहुत सुस्ता चुके अब शेरों की तरह उठो. पृथ्वी पर पड़ी ओस की तरह अपनी बेड़ियों का उतार फेकों, आप बहुत ज्यादा है, और वे बहुत कम है.''

वैसे भी किसी मानव समाज का उत्थान में साहित्य, पत्र–पत्रिकाओं मीडिया का सार्वभौमिक प्रभाव पड़ता है. कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष की धारणा से दलित साहित्य प्रभावित हुआ है. मार्क्सवाद की भांति दलित साहित्य ने घोषणा की है कि, ''पीड़ित व्यक्तियों को स्वयं अपनी दासता से मुक्ति के लिए संगठित होकर शोषकों के विरूध्द निर्णायक संघर्ष लाजिमी होगा. आज के बदलते हुयी स्थिति में दलित पत्र–पत्रिकाओं एवं बौध्दिक क्रांतिकारी साहित्य की प्रबल आवश्यकता है. हिन्दी में दलित साहित्य, बुध्दिवादी, प्रगतिशील, जनवादी, धर्मनिरपेक्ष साहित्य की अनेक विधायें है. दलित लेखक एवं साहित्यकार, सम्पादक आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी अपने कलम को सशक्त एवं जीवंत बनाये रखना चाहते हैं. विचारों में क्रांतिकारी बदलाव लाने हेतू जाति, धर्म एवं सम्प्रदायों से ऊपर उठने की प्रबल आवश्यकता है. साहित्यकारों की मान्यतायें है कि साहित्य एक अचूक शस्त्र है. साहित्य में वह शक्ति छिपी है जो शक्ति तोप, तलवार व बंम के गोलों में भी नहीं पायी जाती है. वह मुर्दो को भी जिंदा बना देती है और किसी भी मूल्क की परतंत्रता को स्वतंत्रता में बदल देती है. इसके साथ ही दासता, दमन, शोषण, उत्पीड़न, गुलामी, अज्ञानता एवं सामाजिक बुराईयों को धोकर एक नई सभ्यता का निर्माण होता है. वर्तमान में दलित

साहित्य की प्रबल आवश्यकता महसूस की जा रही है. यह दलित साहित्य प्रगतिशील चिंतन के माध्यम से बदलाव लाने एवं शोषण उत्पीड़न की सम्पूर्ण पूंजिवादी व्यवस्था का खात्मा करने सक्रिय है. अंधविश्वासों, रूढिवादी व्यवस्था में फसे लोगों को उनसे निकालकर एक बुनियाद की नींव डालती है. वैसे भी दलित साहित्य, पत्र पात्रकायें शासकीय व सामाजिक स्तर पर पूर भारत से निकल रही है, जिसकी संख्या लगभग १५० से भी अधिक है. समाज का घटना चक्र अपनी रफ्तार से गति पकड़ता जा रहा है. सामाजिक तथा आर्थिक हक़ों की बातें न्याय संगत है. ये सभी बातें दलित साहित्य व पत्र पत्रिकाओं भी अपने नजरिये से समाज एवं राष्ट्र को क्रियाशील एवं प्रभावित करती है.

वैसे भी दलित समाज को अनेकों प्रकार अज्ञानता, भाग्यवाद के आधार पर सड़ी गली मान्यताओं के आधार पर विभाजित करके रखा गया है. शोषण, दमन, वेद शास्त्रों, पुराणों, मनुस्मृति गीता जैसी स्मृतियों में दलित वर्ग को उलझाकर रखा गया है. गीता में भी कहा गया है कि, ''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टा, गुण कर्म विभागश:' अज्ञानता के भ्रम जाल में फसाकर भाग्यवादी, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नर्क, पुर्नजन्म के चक्कर में उलझाकर दलित समाज का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक शोषण किया जा रहा है. गावों से लेकर नगरों, गली—कूचों, फुटपातों, हाट बाजारों तक में भी दलित वर्ग के लोग बंधुआं मजदूरी बाल श्रमिक, बेगारी, गुलामी सेवाचाकरी, करता दिमागी गुलामी से फसा हुआ है. उसे दिशा निर्देश ही नहीं प्राप्त हो पा रहा है क्योंकि दलित वर्ग के हितों की नेतागिरी वर्तमान में पूंजिवादी और सवर्णों के हाथ में है. दलित वर्ग आज भी लाचार होकर ठगाया जा रहा है. स्वतंत्रता के ४८ वर्षों के बाद भी उनके सामाजिक जीवन के बारे में कोई खास बदलाव नहीं है. हर स्थानों पर दलितों के मकान, झोपडपट्टियाँ, गांव के बाहर प्रगति, विकास दूरसंचार और यातायात के साधनों से मिलों दूर रहते हैं. नाई बाल नहीं बनाया करते, धोबी कपड़े नहीं धोया करते, पानी सार्वजनिक स्थानों से 'अछूतों' को पीने नहीं दिया जाता, विवाहों के अवसरों पर घोड़ी पर बैठकर ठाकुरों के घर के सामने से नहीं निकल सकते हैं. दूसरे और कुत्ते—बिल्ली जैसे मलिच्छ जानवरों व सवर्णों के घरों से लेकर मंदिरों में बिना रोक टोक के प्रवेश कर सकते हैं. ये सारी बातें दलित साहित्य के माध्यम से कविताओं, विचार गोष्ठीयों के माध्यम से उठायी जाती है.

वर्तमान समय में यकीनन, विचार गोष्ठीयों के माध्यम से उठायी जाती है. राजे महाराजों की चारों ओर तूती बोलती है. जिसके कारण सामाजिक न्याय, बंधुत्व, समता का उल्लंघन कर संविधान प्रदत्त अधिकारों की धज्जियाँ उड़ायी जाती है. जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण ६ दिसम्बर १९९२ की घटना है. विवादित स्थल अयोध्या में बाबरी मस्जिद को साम्प्रदायिक संगठनों के नूमाइन्दों द्वारा संविधान एवं सर्वोच्च न्यायलय में हलपनामा दाखिल करके भी बाबरी मस्जिद को ध्वस्त करके

रख दिया गया. जिसका परिणाम हमने भोगा और आज भी भोग रहे हैं. उसके कारण देश तथा विदेशों तक में साम्प्रदायिक दगें, फसाद, आगजनी हुई और राष्ट्रीय सम्पत्ति का नुकसान हुआ जिस वजह से देश की अर्थव्यवस्था चौपट हो रही है और हम विदेशों से कर्ज लेकर देश का भार ढोह रहे हैं. आज सर्वत्र ही मानवीय मूल्यों का पतन जारी है, इंसानों की कीमत जानवरों से भी बदत्तर हो गई हैं. इसलिए किसी कवि ने कहां है कि, ''जिंदगी के भाव गिर गये इतने कुछ गम नहीं, मौत की बढ़ती हुई कीमत से घबराता हूं मैं.'' संविधान प्रदत्त अधिकारों की बातें अन्य पूंजीवादी बनाम सवर्णों के साहित्य में नहीं होती है या तोड़ मरोड़कर लिखी जाती है. जो राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अखबार है उसके संवाददाता, सम्पादक सभी सवर्ण होते हैं. प्रेस रिपोर्टर सही में दलितों की बातों को उजागर कर प्रकाशित नहीं करते हैं. उनसे सामाजिक न्याय की बातें करना कैसे संभव है? वर्तमान समय में दलित हिन्दी की पत्र पत्रिकायें एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र की स्थापना हेतु भाईचारा, अमन शांति दिलवाने हेतु सक्रिय है.

दलित साहित्य का मौलिक चिंतन है. ये दलित साहित्यकार अनगिनत हिन्दू काल्पनिक देवी देवताओं, ज्योतिषियों, मुल्ला–मौलवियों, पण्डों, पूजारियों, मठाधीशों, पाखण्डियों, चमत्कारिक देवी–देवताओं, अधकचरे पंडितों का भण्डाफोड करते हैं. इसके साथ ही रूढ़िवादी व्यवस्था के उन्मूलनार्थ पाप–पुण्य, स्वर्ग–नर्क, पुनर्जन्म लोक–परलोक ईश्वरवाद की मिथ्यावादी मान्यताओं ढोंगी और कामचोर साधू संन्यासियों की बखियां उधेड़कर सम्पूर्ण समाज को विश्व बंधुत्व एवं वसुदैव कुटुम्बकम् के आधार पर बांधने का अनवरत प्रयास करती है. एक दलित साहित्यकार के शब्दों में यद्यपि सत्य बातें कड़वी होती है सबको खलती है परंतु अपना प्रभाव अवश्य छोड़ती है वे कहते हैं कि, ''मेरी बात तुम्हें कड़वी लगी तो भी सही, मगर मैं कहता हूं कि तुम लोग पंगू हो, चाहे साक्षर हो या निरक्षर, जो अपनों से ज्यादा उस फूटपात पर बैठे हुये पण्डों से अपनी हथेली की रेखायें दिखाते हो.''

आज की हालातों को देखकर लगता है कि कुछ प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ 'रस्सी जल गई मगर ऐंठन न गई.' फिर भी एक जुट होती जा रही हैं. वह खिसयाई बिल्ली खम्बा नोचे की तरह बार–बार अपना घिनौना षडयंत्र अपनाने हेतु हाथ पाव मारने से बाज नहीं आया करती है. अधकचरे स्वयंभू भगवानों की बाढ़ सी आ गई है जिसके कारण साम्प्रदायिकता के घृणित बीज बोकर 'गर्व से कहो हम हिंदू है, जो हिंदू नहीं उसका खून पानी है.' शोषण की अन्यायकारी कुव्यवस्था को जारी रखने हेतु ये पूंजिवादी प्रतिक्रियावादी फासिस्ट व अलगाववादी शक्तियाँ सक्रिय है. शोषक वर्ग ऐसे साहित्य को माध्यम बनाकर अपना स्वार्थ एवं एकाधिकार जारी रखते हुये वर्णव्यवस्था के पोषक तत्व भारत क दलित शोषित वर्ग की जनता को बेबस और लाचार बनाकर उनका शोषण कर रहा है. उदाहरण स्पष्ट है 'मर्ज ज्यों ज्यों बढ़ता गया, त्यों–त्यों दवा की.' ऐसी

स्थिति में दलित साहित्य, उसके साहित्यकार, कवि, लेखक, साहित्यकार, सम्पादक अपनी कलम की तेज धार से उसका विरोध करते हैं. यही नहीं इन कपोल काल्पनिक, ढकोसलावादी, मिथ्यावादी तत्वों को नंगा कर उसका पर्दाफाश करते हैं. 'जगतसत्य है ब्रह्म मिथ्या है.' महापंडित राहुल सांकृत्यायन का मत है कि, ''समाज के जबर्दस्त बांध में, जहाँ पर सुई भर का छेद हो गया, फिर उसका कायम रहना नामुमकिन है. वैसे ही हजारों वर्षों से दबाया रौंदा, कुचला गया दलित शोषित नारी व सर्वहारा वर्ग को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित करके नहीं रखा जा सकता है. वर्ना क्रांति होने कह प्रबल संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है. जिस वस्तु को जितना दबाया जाता है वह उसी रफ्तार से गेंद की भांति नीचे से ऊपर की ओर उठकर आती है.'' डार्विन का विकासवादी सिध्दान्त भी इस बात को मान्यता देता है. राहुलजी कहते हैं कि, ''क्रांति में खून का वही स्थान होता है, जिस प्रकार पूजा पाठ में चंदन और रौली का होता है.'' आज दलित शोषित वर्ग बड़ी ही उत्सुकता से कर्मपथ की ओर अग्रसर होता जा रहा है. यह भारत का मूल निवासी (धरती) पुत्र है. जेठ माह की तपती दोपहरी में अपना खून पसीना सींच कर अधिक उत्पादन कर रहा है. राष्ट्र की एकता समृध्दि और प्रगति की मुख्य धारा से जोड़कर आत्मनिर्भर बनाने में अनवरत प्रयासरत है. यह सारी प्रेरणा हिन्दी का दलित साहित्य व साहित्यकार कर रहा है. इसलिए वह सामाजिक क्रांति के लिये सृजनात्मक कार्य करता हे. 'किस्मत अपनी खुद ही बनाता है आदमी, गैरों के आगे हाथ पसारा न कीजिये.'

यद्यपि भारत आज प्रत्येक क्षेत्रों में विकास की दृष्टि से विदेशों की तुलना में काफी पीछे है. ब सवह अपनी जाति, धर्म व सम्प्रदाय का बढ़ाई चाँद सितारों से बढ़—बढ़कर किया करते हैं, जिसके कारण उसकी विशिष्ट उर्जा का अपव्यय राष्ट्रीय विकास में नहीं हो पाता है. क्योंकि वर्णव्यवस्था के कारण भारत को जातियों का अजायबघर माना जाता है. आलम यह है कि ''जस केला के पात में पात पात मे पात, तस हिन्दू की जात में जात, जात में जात'' जिसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना निर्मित नहीं हो पाती है और देशवासी जाति, धर्म और सम्प्रदायों के संकीर्ण दायरों में उलझकर रह जाया करते हैं. साढ़े तीन हजार से अधिक जातियाँ भारत में मौजूद है ऐसा जातिवाद विश्व में कहीं पर नहीं है.

भारत की शस्य श्यामला निर्मल व पवित्र भूमी पर विपूल सम्प्रदायें मौजूद है. उसके गर्भाशय में हीरे, जवाहरात आदि सभी बहुमूल्य वस्तुयें मौजूद है. उसका दोहन करके हम भारत के लोगों का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं. लेकिन अजीब स्थिति है कि हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोप से अरबों खरबों का कर्ज प्रतिवर्ष लेकर देश का वनज ढो रहा है. दूसरी और देश के सवर्ण पूंजिवादी विचारक राजनीतिज्ञ और उसके नूमाइन्दे जमीनों में सोना चांदी रूपये गाड़कर देश की अर्थव्यवस्था पर लगाम लगा रहे हैं. कुछ लोगों का धन तो स्वीस बैंकों में जमा हो रहा है. धन

संग्रह की प्रवृत्ति वैसे ही घातक है उत्पादन क्षमता को अवरूध्द कर देती है.

९ अप्रैल, ९० 'नवभारत नागपुर' में प्रकाशित समाचार पत्र के मुताबिक एक लेख में पुरी के शंकराचार्य ने बताया कि विश्व हिंदू परिषद द्वारा राम जन्म भूमी मंदिर निर्माण हेतु ५ अरब ९८ करोड़ २० लाख रूपये एकत्रित हैं. सवाल यह उठता है इतना पैसा धर्म के नाम राजनीति से जोड़कर प्राप्त कर लिया. क्या राम मंदिर को आस्था का केन्द्र स्थल मान लेने से तस्करी, वेश्यावृत्ति, देवदासी मंहगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, मुनाफाखोरी, दहेज जैसी प्रथाए जो ज्वलंत सवाल हैं, उसका समाधान क्या हो सकता है? कदापि नहीं. श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बच्चें अकुलाते हैं, मां की गोद से ठिठुर चिपक जाड़े की रात बिताते हैं'' इससे तो बेहतर यह होता कि अयोध्या में एक बड़ा कारखाना स्थापित किया जाता तो लाखों नौजवानों को रोजगार मिलता और अधिक उत्पादन होता जिससे हमारा राष्ट्र आत्मनिर्भर होकर विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है.

## संदर्भ

१. तुम्हारी क्षय: राहुल सांस्कृत्यायन: पृष्ठ ४३
२. इतिहास के पत्रों पर खून के छिटें: भगवतशरण उपाध्याय: १४६–१४७
३. भागों नहीं दुनिया को बदलो: राहुल सांस्कृत्यायन: १४४–१४५
४. डॉ. अम्बेडकर का जीवन संघर्ष (जिज्ञासू), पृ. ८०–८१, १४७.
५. न्याय चक्र–मासिक (संपा. रामविलास पासवान), अंक–मई–जून ९४
६. भीमपत्रिका, जालंधर (संपा.एल.आर.बाली), अंक–नवं. १९९४
७. अछूत: दया पवार: पृष्ठ ३३
८. मनुस्मृति ५/१४८, ९/३, ८/३१३
९. भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व और कृतित्व: डॉ. रामवचनराव, पृष्ठ १२, २२, २३, २४.
१०. रामचरित मानस: सुन्दर काण्ड ५९/६
११. जाति प्रथा का उन्मूलन: डॉ. भीमराव अम्बेडकर, पृष्ठ १३
१२. भगवान बुध्द और उनका धम्म (डॉ. अम्बेडक), पृष्ठ १९१
१३. अंगुत्तर (सम्पा. डॉ. विमलकीर्ति), अंक ३: अप्रै. मई. जून १९९४ ''शोषण का अंत होनेवाला है'', पृष्ठ ७५
१४. ''कैलाश भ्रमण करने फिर जाना'', दिनकर
१५. वोल्गा से गंगा (राहुल सांस्कृत्यायन), पृष्ठ ६४–६९
१६. तुलसी के तीन पात: डॉ. भदन्त आनंद कौसल्यायन, पृष्ठ ६२, ६३, ८०
१७. हिंदू क्यों हारते गये: डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात: पृष्ठ ६–१८
१८. भगवत गीता: ४।१३.